अतिशीघ्र सम्पूर्ण सांसारिक दोषों से पूर्ण शुद्ध हो जाता है। यह वास्तव में देखा गया है। इससे आगे श्रवण करने के साथ-साथ जो पुरुष भक्तियोग की क्रियाओं के प्रसार-प्रचार अथवा कृष्णभावना की धर्म प्रसारिणी क्रियाओं में सहयोग करता है, उसे शनैः-शनैः पारमार्थिक उन्नति का अनुभव होता है। पारमार्थिक उन्नति किसी भी प्रकार की पूर्व-शिक्षा अथवा योग्यता पर निर्भर नहीं करती। यह पथ स्वरूप से ही इतना पावन है कि इसके परायण होने मात्र से मनुष्य अपने-आप शुद्ध हो जाता है।

वेदान्तसूत्र में भी इस सिद्धान्त का निरूपण हैः **प्रकाशश्च कर्मण्यभ्या-सात्** अर्थात् भक्ति इतनी समर्थ है कि उसकी क्रियाओं के परायण होने मात्र से सन्देहरहित जागृति हो जाती है। नारदजी त्रिभुवन में भक्तों के अग्रणी हैं, पर उनका पूर्वजन्म एक दासी के घर हुआ था। इस कारण उनके लिए शिक्षा अथवा कुलीनता की प्राप्ति का कोई अवसर न था। परन्तु जब उनकी जननी महाभागवतों की सेवा करती, तो वे भी तन्निष्ठ हो जाते थे। इस प्रकार कभी-कभी माँ की अनुपस्थिति में वे अपने-आप भी महाभागवतों की सेवा करने लगे। नारदजी स्वयं कहते हैं, 'उनकी आज्ञा से एक बार मैंने उनका उच्छिष्ट भोजन किया। इससे मेरी सम्पूर्ण पापराशि तत्काल नष्ट हो गई और हृदय शुद्ध हो गया। उस समय मुझे योगी का स्वभाव अति रमणीय लगने लगा।' (श्रीमद्भागवत १.५.२५) अपने शिष्य व्यासदेव को नारदजी ने बताया कि पूर्वजन्म के बाल्यकाल में वे चातुर्मास के दिनों में महाभागवतों की सेवा किया करते थे। इस प्रकार उन्हें उन सन्तों का अन्तरंग संग सुलभ हो गया। कभी-कभी वे ऋषि अपने पात्रों में उच्छिष्ट भोजन छोड़ देते। पात्र धोते समय बालक के हृदय में उस उच्छिष्ट के आस्वादन की इच्छा उठती। अतः उसने इसके लिए उन महाभागवतों से अनुमति की याचना की। महज्जनों की अनुमति से उसने उनका वह प्रसाद खा लिया और परिणाम में सम्पूर्ण पापों से मुक्त हो गया। महज्जनों के प्रसाद को ग्रहण करने के प्रताप से शनैः-शनैः वह भी उन्हीं के समान शुद्ध-हृदय हो गया तथा उसमें भी वही रुचि जाग उठी। महाभागवत नित्य-निरन्तर भक्तिभाव से श्रवण, कीर्तन, आदि का रसास्वादन करते थे। उसी रुचि का उन्मेष होने पर नारद भी भगवत्कथा के श्रवण-कीर्तन के लिये अति उत्कंठित हो गये। इस प्रकार स्पष्ट है कि साधु-संग से उनमें भगवद्भक्ति के लिये लौल्य का उदय हुआ। इसमें वे 'वेदान्तसूत्र' से प्रमाण प्रस्तुत करते हैं—**प्रकाशश्च कर्मण्य-भ्यासात्,** जो भगवद्भक्ति में अनन्यभाव से निष्ठ है, उस भक्त के हृदय में सम्पूर्ण तत्त्व अपने-आप स्फुरित हो जाता है। इसका नाम **प्रकाशः** अथवा प्रत्यक्ष अनुभूति है।

जैसा कहा जा चुका है, नारद पूर्व में एक दासीपुत्र थे। इसलिये उन्हें विद्यालय जाने का कोई अवसर नहीं मिला। वे केवल माता की सहायता किया करते थे। सौभाग्यवश माँ ने भक्तों का कुछ सेवाकार्य कर लिया। बालक नारद को भी यह अवसर मिला और इस प्रसंग में प्राप्त सत्संग के द्वारा धर्म के परम लक्ष्य—भक्तियोग